International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

# समानता का कानून या सहमति का समाज? आंबेडकर के दृष्टिकोण से UCC का पुनर्पाठ

**मणिका निर्मेश[1], प्रो. (डॉ.) सीमा पंवार[2]**

[1]शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ, उत्तर प्रदेश, भारत
[2]राजनीति विज्ञान विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ, उत्तर प्रदेश, भारत

**शोध सारांश**

यह शोध-पत्र "समानता का कानून या सहमति का समाज? आंबेडकर के दृष्टिकोण से UCC का पुनर्पाठ" शीर्षक के अंतर्गत भारत में समान नागरिक संहिता (UCC) के प्रश्न का पुनर्विचार करता है। अध्ययन का उद्देश्य विधिक एकरूपता (legal uniformity) और सामाजिक सहमति (social consent) के मध्य अंतर्निहित तनाव को समझना है, विशेष रूप से डॉ. B. R. Ambedkar के संवैधानिक दृष्टिकोण के संदर्भ में। यह शोध ऐतिहासिक, संवैधानिक तथा विश्लेषणात्मक पद्धति के माध्यम से यह पड़ताल करता है कि भारत में आपराधिक और सार्वजनिक कानूनों में विद्यमान एकरूपता के बावजूद विवाह, तलाक, उत्तराधिकार तथा पारिवारिक संबंधों से जुड़े व्यक्तिगत कानून धार्मिक एवं सामुदायिक आधार पर विभाजित क्यों बने हुए हैं, और यह संरचना नागरिक समानता तथा अधिकारों के अनुभव को किस प्रकार प्रभावित करती है। अध्ययन में संविधान सभा की बहसों, आंबेडकर के विधिक हस्तक्षेपों तथा समकालीन विधि आयोगीय विमर्शों के आलोक में यह विश्लेषण किया गया है कि विधिक सुधार की प्रक्रिया केवल औपचारिक कानून-निर्माण का प्रश्न नहीं है, बल्कि यह सामाजिक स्वीकृति, पहचान, और ऐतिहासिक अनुभवों से भी गहराई से जुड़ी हुई है। शोध विशेष रूप से यह जांचता है कि आंबेडकर के विचारों को पारंपरिक रूप से केवल "Uniform Civil Code" की अवधारणा तक सीमित करके देखना पर्याप्त नहीं है, बल्कि उनके दृष्टिकोण में निहित क्रमिक सुधार, विधिक पुनर्संरचना और सामाजिक सहमति के तत्वों को पुनर्पाठ की आवश्यकता है। इसी परिप्रेक्ष्य में यह अध्ययन व्यक्तिगत कानूनों के भीतर विद्यमान लैंगिक असमानताओं, अंतर्धार्मिक विविधताओं तथा संघीय ढांचे से उत्पन्न जटिलताओं को विश्लेषण का आधार बनाता है। अतः यह शोध UCC की बहस को एक स्थिर विधिक समाधान के रूप में नहीं, बल्कि एक बहु-आयामी सामाजिक-वैधानिक प्रक्रिया के रूप में समझने का प्रयास करता है, जिसमें समानता, न्याय और विविधता के मध्य संबंधों का पुनर्मूल्यांकन आवश्यक हो जाता है।

**मुख्य बिंदु: UCC** (Uniform Civil Code) समान नागरिक संहिता **,CCC** (Common Civil Code)साझा सामान्य नागरिक संहिता, लैंगिक न्याय, संवैधानिक नैतिकता, विधिक बहुलवाद

## परिचय

भारत एक बहुलतावादी समाज है, जहाँ धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक विविधताएँ केवल पहचान का हिस्सा नहीं, बल्कि सामाजिक संगठन की मूल संरचना हैं। इसके बावजूद भारतीय राज्य नागरिकता, अधिकारों और दायित्वों के स्तर पर एक समान विधिक ढाँचे को स्थापित करता है। विशेष रूप से आपराधिक कानून, चुनावी प्रक्रिया, न्यायिक संरचना और नागरिकता संबंधी व्यवस्थाएँ पूरे देश में एकरूपता का अनुभव कराती हैं। यह संकेत

करता है कि विधिक समानता का विचार भारतीय राज्य व्यवस्था में नया नहीं है, बल्कि पहले से ही आंशिक रूप में विद्यमान है। किन्तु इसी व्यवस्था के भीतर व्यक्तिगत कानून–जैसे विवाह, तलाक, उत्तराधिकार और पारिवारिक संबंध–विभिन्न धार्मिक समुदायों के आधार पर संचालित होते हैं। परिणामस्वरूप एक ही नागरिकता के अंतर्गत रहते हुए भी नागरिकों के अधिकारों का अनुभव भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होता है। यह द्वैध स्थिति केवल विधिक तकनीकीता का प्रश्न नहीं, बल्कि संवैधानिक नैतिकता, लैंगिक न्याय और सामाजिक समन्वय से जुड़ा एक गहन वैचारिक प्रश्न बन जाती है। डॉ. भीमराव आंबेडकर ने इस अंतर्विरोध को स्पष्ट रूप से पहचाना था। उनके अनुसार, लोकतंत्र केवल राजनीतिक संरचना नहीं, बल्कि सामाजिक जीवन में समानता की वास्तविक स्थापना का माध्यम है। उन्होंने यह तर्क दिया कि यदि नागरिकों के बीच व्यक्तिगत कानूनों के आधार पर भिन्नताएँ बनी रहती हैं, तो यह समान नागरिकता की अवधारणा को कमजोर कर सकता है। इस दृष्टि से समान नागरिक संहिता का विचार केवल विधिक एकरूपता स्थापित करने का प्रयास नहीं, बल्कि एक ऐसे समाज की परिकल्पना है, जहाँ समानता और न्याय व्यवहारिक स्तर पर भी अनुभव किए जा सकें। हालाँकि, आंबेडकर का दृष्टिकोण कठोर एकरूपता का नहीं था। वे इस परिवर्तन को क्रमिक, सहमति-आधारित और सामाजिक रूप से स्वीकार्य प्रक्रिया के रूप में देखते थे। यही कारण है कि उनका विचार "Uniform Civil Code" के साथ-साथ एक व्यापक "Common Civil Code" की ओर भी संकेत करता है, जो विविधताओं को नकारने के बजाय उन्हें समन्वित करने का प्रयास करता है।

इसी संदर्भ में यह अध्ययन इस प्रश्न की पड़ताल करता है कि भारत जैसे बहुलतावादी समाज में विधिक समानता को किस प्रकार समझा जाए–क्या यह एकरूपता के माध्यम से संभव है, या फिर सहमति और संवैधानिक नैतिकता पर आधारित सामाजिक पुनर्गठन अधिक उपयुक्त मार्ग प्रस्तुत करता है।

## ऐतिहासिक संदर्भ

भारत में समान नागरिक संहिता का विचार संविधान निर्माण की प्रक्रिया के दौरान एक महत्वपूर्ण वैचारिक विमर्श के रूप में उभरा। संविधान सभा (1946–1949) में यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया कि आधुनिक लोकतांत्रिक राज्य के लिए नागरिकों के बीच विधिक समानता आवश्यक है। इसी कारण आपराधिक कानून–जैसे भारतीय न्याय संहिता (पूर्व में भारतीय दंड संहिता–IPC), भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता (पूर्व में दंड प्रक्रिया संहिता–CrPC) और भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 2023 (पूर्व में Indian Evidence Act)—को पूरे देश में एक समान रूप से लागू किया गया। किन्तु व्यक्तिगत कानूनों के क्षेत्र में औपनिवेशिक विरासत ने एक भिन्न संरचना को जन्म दिया। ब्रिटिश शासन ने प्रशासनिक स्थिरता बनाए रखने के उद्देश्य से विवाह, उत्तराधिकार और पारिवारिक मामलों को धार्मिक समुदायों की परंपराओं के अनुसार संचालित होने दिया। इस प्रकार एक ऐसी विधिक प्रणाली विकसित हुई, जिसमें सार्वजनिक कानूनों में एकरूपता थी, जबकि निजी कानूनों में विविधता बनी रही। यह द्वैध संरचना आगे चलकर समान नागरिक संहिता के प्रश्न का आधार बनी। संविधान सभा में इस विषय पर व्यापक बहस हुई। कुछ सदस्यों ने इसे राष्ट्रीय एकता और आधुनिकता के लिए आवश्यक बताया, जबकि अन्य ने इसे धार्मिक स्वतंत्रता और सांस्कृतिक अधिकारों के संदर्भ में देखा। डॉ. आंबेडकर ने इस बहस में एक संतुलित दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए स्पष्ट किया कि समान नागरिक संहिता का उद्देश्य किसी विशेष धर्म में हस्तक्षेप करना नहीं, बल्कि नागरिकों के बीच समानता स्थापित करना है। इसी कारण इसे तत्काल लागू करने के बजाय राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों (अनुच्छेद 44) में स्थान दिया गया, ताकि भविष्य में सामाजिक सहमति के आधार पर इसे लागू किया जा सके। यह निर्णय इस बात को भी दर्शाता है कि भारतीय संविधान ने विधिक समानता और सामाजिक विविधता के बीच संतुलन बनाने का प्रयास किया।

## डॉ. आंबेडकर का दृष्टिकोण: समान नागरिक संहिता बनाम साझा नागरिक संहिता

समान नागरिक संहिता (UCC) पर डॉ. भीमराव आंबेडकर का दृष्टिकोण प्रायः एकरूपता के पक्ष में सीधी वकालत के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, जबकि उनके विचारों का गहन अध्ययन यह संकेत देता है कि उनका मूल उद्देश्य कठोर विधिक समानता स्थापित करना नहीं, बल्कि संवैधानिक मूल्यों–विशेषकर समानता, स्वतंत्रता और न्याय–को सामाजिक जीवन में व्यावहारिक रूप देना था। इस संदर्भ में UCC को समझना केवल एक विधिक सुधार के रूप में पर्याप्त नहीं है; इसे एक व्यापक सामाजिक-राजनीतिक परियोजना के रूप में देखना अधिक समीचीन है। संविधान सभा की बहसों में आंबेडकर ने स्पष्ट किया था कि व्यक्तिगत कानून, विशेष रूप से हिंदू विधि, में ऐसी अनेक व्यवस्थाएँ थीं जो न केवल जाति-आधारित असमानता को बनाए रखती थीं, बल्कि लैंगिक भेदभाव को भी संस्थागत रूप देती थीं। उनके अनुसार, यदि ये व्यवस्थाएँ संविधान के मौलिक अधिकारों–विशेषकर अनुच्छेद 14 और 15—के अनुरूप संशोधित नहीं की जातीं, तो वे न्यायिक परीक्षण में टिक नहीं पाएँगी। इस प्रकार, आंबेडकर के लिए विधिक सुधार केवल एक वैकल्पिक नीति नहीं, बल्कि संवैधानिक अनिवार्यता थी। हालाँकि, आंबेडकर का दृष्टिकोण यह भी स्वीकार करता है कि भारत जैसे बहुलतावादी समाज में विधिक एकरूपता को तत्काल और सार्वभौमिक रूप से लागू करना न तो व्यावहारिक है और न ही लोकतांत्रिक दृष्टि से उपयुक्त। उन्होंने यह तर्क दिया कि राज्य को ऐसा ढाँचा विकसित करना चाहिए, जिसमें नागरिकों को एक समान विधिक विकल्प उपलब्ध हो, किन्तु उस विकल्प को अपनाना बाध्यकारी न हो। यह विचार एक ऐसी व्यवस्था की ओर संकेत करता है, जिसे कठोर "Uniform Civil Code" के स्थान पर एक "Common Civil Code" (साझा नागरिक संहिता) के रूप में समझा जा सकता है–जहाँ सहमति, क्रमिक परिवर्तन और सामाजिक स्वीकृति को प्राथमिकता दी जाती है।

इस परिप्रेक्ष्य में CCC की अवधारणा विधिक बहुलवाद को नकारने के बजाय उसे संवैधानिक नैतिकता के ढाँचे में पुनर्संगठित करने का प्रयास करती है। यहाँ विविधता को समस्या के रूप में नहीं, बल्कि एक ऐसी वास्तविकता के रूप में स्वीकार किया जाता है, जिसे न्याय और समानता के मानकों के अनुरूप पुनर्परिभाषित करने की आवश्यकता है। इस दृष्टिकोण में राज्य की भूमिका एक नियंत्रक शक्ति के बजाय एक सुविधादाता (facilitator) की होती है, जो विभिन्न समुदायों के बीच संवाद और सहमति के माध्यम से विधिक सुधार की प्रक्रिया को आगे बढ़ाता है।

लैंगिक न्याय के संदर्भ में यह विमर्श और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। आंबेडकर ने बार-बार इस बात पर बल दिया कि महिलाओं के अधिकारों की रक्षा के बिना किसी भी लोकतांत्रिक समाज की कल्पना अधूरी है। हिंदू कोड बिल के माध्यम से उन्होंने विवाह, उत्तराधिकार और संपत्ति के क्षेत्र में महिलाओं को अधिकार दिलाने का प्रयास किया, जो उस समय के सामाजिक ढाँचे में एक क्रांतिकारी कदम था। इस दृष्टि से UCC या CCC का प्रश्न केवल धार्मिक या सांस्कृतिक पहचान का मुद्दा नहीं, बल्कि महिलाओं के समान अधिकार और गरिमा से जुड़ा हुआ प्रश्न है।

अतः यह स्पष्ट होता है कि आंबेडकर का दृष्टिकोण UCC के पारंपरिक अर्थ–अर्थात् पूर्ण विधिक एकरूपता–से अधिक जटिल और सूक्ष्म है। वे एक ऐसे समाज की परिकल्पना करते हैं, जहाँ विधिक ढाँचा न केवल समानता सुनिश्चित करे, बल्कि विविधताओं के साथ संवाद स्थापित करते हुए सामाजिक समन्वय को भी सुदृढ़ बनाए। इस प्रकार, UCC बनाम CCC का विमर्श अंततः इस मूल प्रश्न पर आकर केंद्रित होता है–क्या विधिक समानता को थोपकर स्थापित किया जा सकता है, या उसे सहमति, संवैधानिक नैतिकता और सामाजिक परिवर्तन के माध्यम से विकसित किया जाना चाहिए?

## विधिक सुधार की पूर्व-शर्तें

भारत में समान नागरिक संहिता के प्रश्न को समझने के लिए विधिक सुधार को केवल नियम-निर्माण की प्रक्रिया के रूप में नहीं, बल्कि उसके व्यापक सामाजिक और संस्थागत पूर्वाधारों के संदर्भ में देखना आवश्यक है। किसी भी बड़े

विधिक परिवर्तन की प्रभावशीलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह समाज की वास्तविक संरचना–उसकी विविधताओं, असमानताओं और संस्थागत क्षमताओं–के साथ किस हद तक सामंजस्य स्थापित कर पाता है।

भारतीय समाज की विविधता बहुस्तरीय है। यह केवल धर्मों के बीच ही नहीं, बल्कि भाषा, क्षेत्र, शिक्षा, आय-स्तर और सांस्कृतिक प्रथाओं के भीतर भी गहराई से विद्यमान है। उदाहरण के लिए, देश में बहुभाषिकता एक स्वाभाविक सामाजिक स्थिति है; विभिन्न राज्यों में अलग-अलग भाषाएँ प्रशासन, शिक्षा और न्यायिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करती हैं। इसी प्रकार शिक्षा व्यवस्था में भी विभिन्न बोर्डों और मानकों का सह-अस्तित्व दिखाई देता है, जिससे अवसरों और संसाधनों तक पहुँच में भिन्नताएँ उत्पन्न होती हैं। आर्थिक स्तर पर आय और संसाधनों की असमानता भी एक महत्वपूर्ण कारक है। विभिन्न सामाजिक समूहों के बीच जीवन-स्तर, शिक्षा और विधिक जागरूकता में अंतर यह संकेत करता है कि समान अधिकारों की औपचारिक उपलब्धता के बावजूद उनका वास्तविक उपयोग समान रूप से संभव नहीं हो पाता। इस दृष्टि से विधिक समानता केवल क़ानून में लिखे जाने से नहीं, बल्कि उसकी समान पहुँच और प्रभावशीलता से निर्धारित होती है।

लैंगिक परिप्रेक्ष्य में यह प्रश्न और अधिक जटिल हो जाता है। यद्यपि संवैधानिक स्तर पर महिलाओं और पुरुषों के बीच समानता स्थापित की गई है, परंतु व्यवहारिक स्तर पर विवाह, उत्तराधिकार, संपत्ति और पारिवारिक संबंधों में अभी भी असमानताएँ विद्यमान हैं। यह स्थिति दर्शाती है कि लैंगिक न्याय केवल विधिक प्रावधानों का परिणाम नहीं, बल्कि सामाजिक संरचनाओं और मानसिकताओं से भी गहराई से जुड़ा हुआ है।

इसी प्रकार, एक ही धर्म के भीतर भी क्षेत्रीय, जातीय और सांस्कृतिक आधारों पर प्रथाओं में भिन्नता देखी जाती है। यह तथ्य इस धारणा को चुनौती देता है कि किसी भी समाज को एक ही विधिक ढाँचे में सहज रूप से समाहित किया जा सकता है। अतः विधिक बहुलवाद को केवल एक बाधा के रूप में नहीं, बल्कि एक ऐसी वास्तविकता के रूप में समझना आवश्यक है, जिसके भीतर असमानताओं की पहचान कर सुधार की दिशा निर्धारित की जा सकती है।

इस परिप्रेक्ष्य में यह स्पष्ट होता है कि समान नागरिक संहिता का प्रश्न केवल "एक कानून बनाम अनेक कानून" का प्रश्न नहीं है, बल्कि यह इस बात से जुड़ा है कि क्या समाज में समानता की आधारभूत स्थितियाँ–जैसे शिक्षा, जागरूकता, सामाजिक विश्वास और संस्थागत क्षमता–पर्याप्त रूप से विकसित हैं। नीतिगत स्तर पर भी यह देखा गया है कि व्यापक विधिक एकरूपता की दिशा में ठोस और निरंतर प्रयासों की अपेक्षा अधिक रही है, जो इस बात की ओर संकेत करता है कि यह प्रक्रिया स्वाभाविक रूप से जटिल और बहु-आयामी है।

अतः यह कहा जा सकता है कि समान नागरिक संहिता की दिशा में किसी भी प्रभावी कदम के लिए आवश्यक है कि पहले सामाजिक असमानताओं की पहचान, विधिक जागरूकता का विस्तार, और चरणबद्ध सुधार की प्रक्रिया को प्राथमिकता दी जाए। इस दृष्टि से विधिक सुधार एक तात्कालिक हस्तक्षेप नहीं, बल्कि एक दीर्घकालिक सामाजिक-वैधानिक प्रक्रिया के रूप में उभरता है, जिसमें समानता को केवल स्थापित नहीं, बल्कि विकसित किया जाता है।

## गोवा और उत्तराखंड के अनुभव: व्यवहारिक कार्यान्वयन, चुनौतियाँ और सीख

समकालीन विमर्श में गोवा और उत्तराखंड के उदाहरण समान नागरिक संहिता के व्यावहारिक परीक्षण-स्थल के रूप में सामने आते हैं। इनका महत्व इस बात में है कि ये यह दिखाते हैं कि विधिक एकरूपता व्यवहार में किस हद तक कार्य करती है, किन सीमाओं से टकराती है, और नीति-निर्माण के लिए कौन-सी सावधानियाँ आवश्यक हैं।

### (क) गोवा का अनुभव

गोवा की नागरिक व्यवस्था प्रायः एक "समान सिविल ढाँचे" के उदाहरण के रूप में उद्धृत होती है। व्यवहारिक स्तर पर यह कुछ क्षेत्रों–जैसे विवाह-पंजीकरण, संपत्ति/उत्तराधिकार के कुछ नियम–में अपेक्षाकृत अधिक प्रक्रियात्मक स्पष्टता और पूर्वानुमेयता प्रदान करती है, जिससे न्यायिक प्रक्रिया सरल होती है। किन्तु इसके साथ ही

यह भी स्पष्ट होता है कि यह ढाँचा पूर्णतः एकरूप नहीं है। ऐतिहासिक रूप से विकसित प्रावधानों के कारण समुदाय-विशिष्ट अपवाद, स्थानीय प्रथाएँ और कुछ भिन्न व्यवस्थाएँ बनी रहती हैं। इससे यह संकेत मिलता है कि व्यवहार में "uniformity" अक्सर संशोधित/आंशिक रूप में ही कार्य करती है। एकरूपता लागू करने से पहले स्थानीय प्रथाओं का संहिताकरण (codification), अपवादों की स्पष्ट परिभाषा और प्रक्रियात्मक सरलीकरण आवश्यक है; अन्यथा नियम और अपवाद के बीच अस्पष्टता बनी रहती है।

**(ख) उत्तराखंड का अनुभव**

उत्तराखंड द्वारा पारित UCC एक समकालीन पहल है, जो विवाह, तलाक, उत्तराधिकार और सहजीवन (live-in) जैसे क्षेत्रों को एक ढाँचे में लाने का प्रयास करती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि राज्य-स्तर पर नीतिगत पहल और विधायी क्षमता मौजूद है। साथ ही, इस व्यवस्था में अनुसूचित जनजातियों को अपवाद के रूप में बाहर रखा जाना और क्रियान्वयन की प्रारंभिक चुनौतियाँ (जैसे जागरूकता, प्रशासनिक तैयारी, प्रक्रियात्मक स्पष्टता) यह दर्शाती हैं कि एकरूपता को व्यवहार में लाने के लिए लचीलापन और चरणबद्धता आवश्यक होती है।

किसी भी व्यापक विधिक परिवर्तन के साथ संस्थागत तैयारी (implementation machinery), प्रशिक्षण, जन-जागरूकता और स्पष्ट नियमावली अनिवार्य हैं; साथ ही, संवैधानिक अपवादों को संतुलित ढंग से समाहित करना पड़ता है।

**(ग) तुलनात्मक संकेत और नीतिगत निहितार्थ**

इन दोनों उदाहरणों से एक साझा तथ्य उभरता है–विधिक एकरूपता केवल क़ानून बना देने से स्थापित नहीं होती; उसकी प्रभावशीलता सामाजिक स्वीकृति, प्रशासनिक क्षमता और नियमों की स्पष्टता पर निर्भर करती है। जहाँ प्रक्रियात्मक स्पष्टता और संहिताकरण मजबूत होता है, वहाँ कार्यान्वयन अपेक्षाकृत सहज दिखता है; वहीं जहाँ विविधताओं के साथ समन्वय की रूपरेखा अस्पष्ट रहती है, वहाँ अपवाद और व्याख्या-सम्बंधी चुनौतियाँ उभरती हैं।

इसी संदर्भ में UCC और CCC के बीच अंतर विश्लेषण के लिए उपयोगी हो जाता है। जहाँ UCC एक समान विधिक ढाँचे पर बल देता है, वहीं CCC का दृष्टिकोण संवाद, सहमति और क्रमिक सुधार के माध्यम से विविधताओं को समाहित करते हुए समानता की दिशा में बढ़ने का संकेत देता है।

Codification before unification (पहले स्पष्ट संहिताकरण, फिर व्यापक एकरूपता)

Phased implementation (चरणबद्ध लागूकरण)

Clear exceptions & safeguards (अपवादों की स्पष्ट परिभाषा)

Administrative readiness & awareness (संस्थागत तैयारी और जन-जागरूकता)

Gender-focused reform (लैंगिक न्याय को प्राथमिकता)

## चुनौतियाँ: राजनीतिक यथार्थ और संरचनात्मक अवरोध

समान नागरिक संहिता से संबंधित विमर्श में सबसे प्रमुख चुनौती इसकी वैचारिक स्वीकृति और व्यवहारिक क्रियान्वयन के बीच मौजूद अंतर को लेकर उभरती है। विधिक स्तर पर एकरूपता की अवधारणा स्पष्ट दिखाई देती है, किन्तु जब इसे सामाजिक संदर्भ में लागू करने का प्रश्न आता है, तो अनेक संरचनात्मक अवरोध सामने आते हैं, जो इस प्रक्रिया को जटिल बना देते हैं।

एक प्रमुख अवरोध **सामाजिक संरचनाओं की अंतर्विरोधी प्रकृति** से संबंधित है। विभिन्न समुदायों में प्रचलित पारिवारिक और उत्तराधिकार संबंधी व्यवस्थाएँ केवल विधिक नियम नहीं, बल्कि सामाजिक संबंधों और शक्ति-संतुलन का हिस्सा होती हैं। ऐसी स्थिति में इन व्यवस्थाओं में हस्तक्षेप को केवल सुधार के रूप में नहीं, बल्कि पहचान और परंपरा के पुनर्गठन के रूप में भी देखा जाता है, जिससे प्रतिरोध की संभावना उत्पन्न होती है।

दूसरी महत्वपूर्ण चुनौती **विधिक हस्तक्षेप की वैधता (legitimacy)** से जुड़ी है। किसी भी कानून की प्रभावशीलता इस बात पर निर्भर करती है कि समाज उसे किस हद तक स्वीकार करता है। यदि विधिक परिवर्तन सामाजिक संवाद और विश्वास-निर्माण के बिना लागू किए जाते हैं, तो वे व्यवहार में निष्प्रभावी हो सकते हैं या उनके विरुद्ध असंतोष उत्पन्न हो सकता है।

तीसरा अवरोध **नीतिगत असंगति और कार्यान्वयन की अस्पष्टता** में दिखाई देता है। विभिन्न स्तरों पर विधिक सुधार की दिशा में प्रयासों की निरंतरता और स्पष्टता का अभाव यह संकेत करता है कि इस विषय पर एक समन्वित नीति-दृष्टिकोण विकसित नहीं हो पाया है। इससे यह स्थिति उत्पन्न होती है कि विधिक परिवर्तन की दिशा स्पष्ट होने के बावजूद उसका व्यावहारिक मार्ग अस्पष्ट बना रहता है।

चौथी चुनौती **संस्थागत क्षमता और प्रशासनिक तैयारी** से संबंधित है। किसी भी व्यापक विधिक ढाँचे के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए न्यायिक, प्रशासनिक और सामाजिक संस्थाओं का समन्वित और सक्षम होना आवश्यक है। यदि यह संरचना पर्याप्त रूप से विकसित नहीं होती, तो कानून का वास्तविक प्रभाव सीमित रह जाता है।

पाँचवीं चुनौती **राजनीतिक विमर्श और सामाजिक विश्वास के बीच दूरी** के रूप में उभरती है। समान नागरिक संहिता का प्रश्न कई बार राजनीतिक ध्रुवीकरण का विषय बन जाता है, जिससे इसके विधिक और सामाजिक आयामों पर संतुलित चर्चा प्रभावित होती है। परिणामस्वरूप यह विमर्श सहमति के निर्माण के बजाय वैचारिक विभाजन को भी बढ़ा सकता है।

अंततः, यह भी देखा जाता है कि विधिक सुधार की प्रक्रिया में अक्सर **सामाजिक अनुभवों की जटिलता** को पर्याप्त महत्व नहीं दिया जाता। इससे यह जोखिम उत्पन्न होता है कि कानून का स्वरूप तो एकरूप हो जाए, किन्तु उसका प्रभाव विभिन्न समूहों पर असमान रूप से पड़े।

इस प्रकार, समान नागरिक संहिता से जुड़ी चुनौतियाँ केवल विविधता की उपस्थिति से नहीं, बल्कि विधिक, सामाजिक और राजनीतिक प्रक्रियाओं के बीच समन्वय के अभाव से उत्पन्न होती हैं। यह स्थिति इस बात की ओर संकेत करती है कि किसी भी प्रभावी विधिक परिवर्तन के लिए केवल नियम-निर्माण पर्याप्त नहीं, बल्कि बहु-स्तरीय समझ और संतुलित दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है।

## नीति सुझाव

समान नागरिक संहिता के प्रश्न को एक व्यापक सामाजिक-वैधानिक परिवर्तन के रूप में देखते हुए, नीति-निर्माण को एकरूपता के तात्कालिक लक्ष्य के बजाय **समानता की क्रमिक प्राप्ति** की दिशा में उन्मुख होना चाहिए। इस संदर्भ में निम्नलिखित सुझाव एक संतुलित और व्यवहारिक ढाँचा प्रस्तुत करते हैं:

### 1. संहिताकरण पहले, एकरूपता बाद में (Codification before Uniformity)

व्यक्तिगत कानूनों में मौजूद प्रथाओं, अपवादों और क्षेत्रीय विविधताओं का **स्पष्ट संहिताकरण** किया जाए। इससे:

- नियमों की पारदर्शिता बढ़ेगी
- न्यायिक व्याख्या में एकरूपता आएगी
- सुधार के लिए ठोस आधार तैयार होगा

### 2. चरणबद्ध और क्षेत्र-विशिष्ट सुधार (Phased & Sectoral Reform)

एक साथ व्यापक परिवर्तन के बजाय:

- विवाह पंजीकरण, आयु, सहमति जैसे **साझा क्षेत्रों** से शुरुआत
- बाद में उत्तराधिकार, संपत्ति जैसे जटिल क्षेत्रों में विस्तार
- इससे सामाजिक प्रतिरोध कम होगा और सीखते हुए सुधार संभव होगा।

**3. लैंगिक न्याय को प्राथमिकता (Gender-First Approach)**

सुधार की दिशा में पहला लक्ष्य होना चाहिए:

- महिलाओं के अधिकारों की समान सुरक्षा
- भरण-पोषण, उत्तराधिकार, संपत्ति में **समानता का प्रभावी क्रियान्वयन**

किसी भी UCC/CCC मॉडल की वैधता का परीक्षण **यहीं से होगा**।

**4. परामर्श और सहमति-आधारित प्रक्रिया (Consultative & Consensus-driven Reform)**

विधिक परिवर्तन से पूर्व:

- धार्मिक समूहों, महिला संगठनों, विधि विशेषज्ञों से संवाद
- सार्वजनिक परामर्श और ड्राफ्ट पर प्रतिक्रिया

इससे कानून की **legitimacy** और सामाजिक स्वीकृति बढ़ेगी।

**5. राज्य-स्तरीय प्रयोग और तुलनात्मक मूल्यांकन (State-level Pilots)**

- विभिन्न राज्यों में नियंत्रित स्तर पर मॉडल लागू किए जाएँ
- उनके परिणामों का तुलनात्मक अध्ययन हो

Goa और Uttarakhand जैसे अनुभवों से सीखकर **best practices विकसित** की जाएँ।

**6. स्पष्ट अपवाद और संवैधानिक संरक्षण (Defined Exceptions & Safeguards)**

- अनुसूचित जनजातियों और विशिष्ट सांस्कृतिक समूहों के लिए **स्पष्ट और न्यायसंगत अपवादों** की व्यवस्था
- अपवादों को अस्थायी/समीक्षा-आधारित बनाया जाए

**7. संस्थागत क्षमता और क्रियान्वयन तंत्र (Institutional Readiness)**

- न्यायपालिका, प्रशासन और रजिस्ट्रेशन तंत्र का प्रशिक्षण
- सरल प्रक्रियाएँ, डिजिटल रिकॉर्ड और समयबद्ध सेवाएँ

बिना सक्षम तंत्र के कोई भी सुधार **कागज़ तक सीमित** रह सकता है।

**8. विधिक जागरूकता और पहुँच (Legal Literacy & Access)**

- नागरिकों को उनके अधिकारों और प्रक्रियाओं की जानकारी
- बहुभाषिक सामग्री और स्थानीय स्तर पर सहायता

समान कानून का वास्तविक लाभ तभी होगा जब उसकी **समान पहुँच** हो।

**9. निरंतर समीक्षा और डेटा-आधारित मूल्यांकन (Review & Evidence-based Policy)**

- लागू प्रावधानों का समय-समय पर मूल्यांकन
- प्रभाव (खासकर लैंगिक न्याय) पर **डेटा-आधारित आकलन**

इससे नीति में आवश्यक संशोधन समय पर संभव होंगे।

उपरोक्त सुझाव यह संकेत करते हैं कि समान नागरिक संहिता को एक तात्कालिक विधिक हस्तक्षेप के रूप में नहीं, बल्कि **संवाद, संहिताकरण, चरणबद्धता और सामाजिक स्वीकृति** पर आधारित दीर्घकालिक प्रक्रिया के रूप में आगे बढ़ाया जाना चाहिए। इस दिशा में CCC जैसा दृष्टिकोण—जो सहमति और क्रमिक सुधार पर बल देता है—व्यवहारिक नीति-निर्माण के लिए एक उपयोगी ढाँचा प्रदान करता है।

## निष्कर्ष

समान नागरिक संहिता का प्रश्न भारतीय विधिक व्यवस्था के भीतर समानता और विविधता के बीच निहित जटिल

संबंधों को उजागर करता है। ऐतिहासिक विकासक्रम, व्यक्तिगत कानूनों की संरचना तथा समकालीन विधिक प्रयोगों के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि विधिक एकरूपता का विचार व्यवहारिक रूप में सामाजिक और संस्थागत सीमाओं से प्रभावित रहता है। गोवा और उत्तराखंड जैसे उदाहरण यह संकेत करते हैं कि एक समान ढाँचे की स्थापना संभव तो है, किन्तु वह प्रायः अपवादों, स्थानीय परिस्थितियों और प्रशासनिक चुनौतियों के साथ ही विकसित होता है।

डॉ. आंबेडकर का दृष्टिकोण इस विमर्श को एक गहन वैचारिक आधार प्रदान करता है, जहाँ विधिक सुधार को केवल एकरूपता स्थापित करने के उपकरण के रूप में नहीं, बल्कि न्याय और समानता को व्यवहारिक स्तर पर सुनिश्चित करने की प्रक्रिया के रूप में देखा गया है। उनके विचार यह संकेत करते हैं कि सामाजिक संरचनाओं की जटिलता को ध्यान में रखते हुए विधिक परिवर्तन को क्रमिक, संवाद-आधारित और व्यावहारिक रूप में विकसित किया जाना चाहिए।

इस अध्ययन के विभिन्न आयाम—विधिक बहुलवाद की वास्तविकता, सामाजिक-आर्थिक और लैंगिक असमानताओं की उपस्थिति, तथा राजनीतिक और संस्थागत चुनौतियाँ—यह दर्शाते हैं कि समान नागरिक संहिता का प्रश्न किसी एक आयाम में सीमित नहीं है। इसके प्रभावी क्रियान्वयन के लिए केवल विधायी पहल पर्याप्त नहीं, बल्कि सामाजिक स्वीकृति, संस्थागत क्षमता और नीतिगत स्पष्टता भी आवश्यक है।

अतः यह कहा जा सकता है कि समान नागरिक संहिता को एक स्थिर और तात्कालिक समाधान के रूप में देखने के बजाय, उसे एक ऐसी दीर्घकालिक सामाजिक-वैधानिक प्रक्रिया के रूप में समझना अधिक उपयुक्त है, जिसमें समानता को विधिक प्रावधानों के साथ-साथ सामाजिक संरचनाओं के स्तर पर भी विकसित किया जाता है। यही दृष्टिकोण भारतीय संदर्भ में न्याय, समानता और सामाजिक समन्वय के बीच संतुलन स्थापित करने की दिशा में एक अधिक यथार्थवादी मार्ग प्रस्तुत करता है।

## संदर्भ सूची

1. Ambedkar, B. R. (1948, November 23). *Speech on Uniform Civil Code*. In *Constituent Assembly Debates (Vol. VII)*. Government of India.
2. Ambedkar, B. R. (1947). *States and Minorities: What are Their Rights and How to Secure Them in the Constitution of Free India*.
3. Ambedkar, B. R. (2014). *Dr. Babasaheb Ambedkar: Writings and Speeches* (Vol. 1–17). Government of Maharashtra.
4. Government of India. (1950). *The Constitution of India*.
5. Government of Goa. (1867/Adapted). *Portuguese Civil Code (Goa Civil Code)*.
6. *Mohd. Ahmed Khan v. Shah Bano Begum*, AIR 1985 SC 945.
7. *Sarla Mudgal v. Union of India*, AIR 1995 SC 1531.
8. *Shayara Bano v. Union of India*, (2017) 9 SCC 1.
9. Law Commission of India. (2018). *Consultation Paper on Reform of Family Law*.
10. Law Commission of India. (2023). *Public Notice on Uniform Civil Code*.
11. Government of India. (2023). *Bharatiya Nyaya Sanhita*.
12. Government of India. (2023). *Bharatiya Nagarik Suraksha Sanhita*.
13. Government of India. (2023). *Bharatiya Sakshya Adhiniyam*.
14. Government of Uttarakhand. (2024). *Uniform Civil Code of Uttarakhand Act*.
15. Agnes, F. (2011). *Family Law in India* (Vol. I & II). Oxford University Press.
16. Menski, W. (2003). *Hindu Law: Beyond Tradition and Modernity*. Oxford University Press.

17. Agnes, F. (2012). Conjugality, Property and Religious Identity in India. *Economic and Political Weekly*. Bhatia, G. (2018). Gender Justice and the Uniform Civil Code Debate. *Indian Law Review*.
18. United Nations. (1948). *Universal Declaration of Human Rights (UDHR)*.
19. United Nations. (1979). *Convention on the Elimination of All Forms of Discrimination Against Women (CEDAW)*.
20. Mishra, M. J. (Year). Uniform Civil Code and Ambedkar's Perspective [Video]. YouTube.